राष्ट्रीय मीडिया से वंचितों का भरोसा उठ रहा है

November 18, 2024
अभय कुमार

2 min read
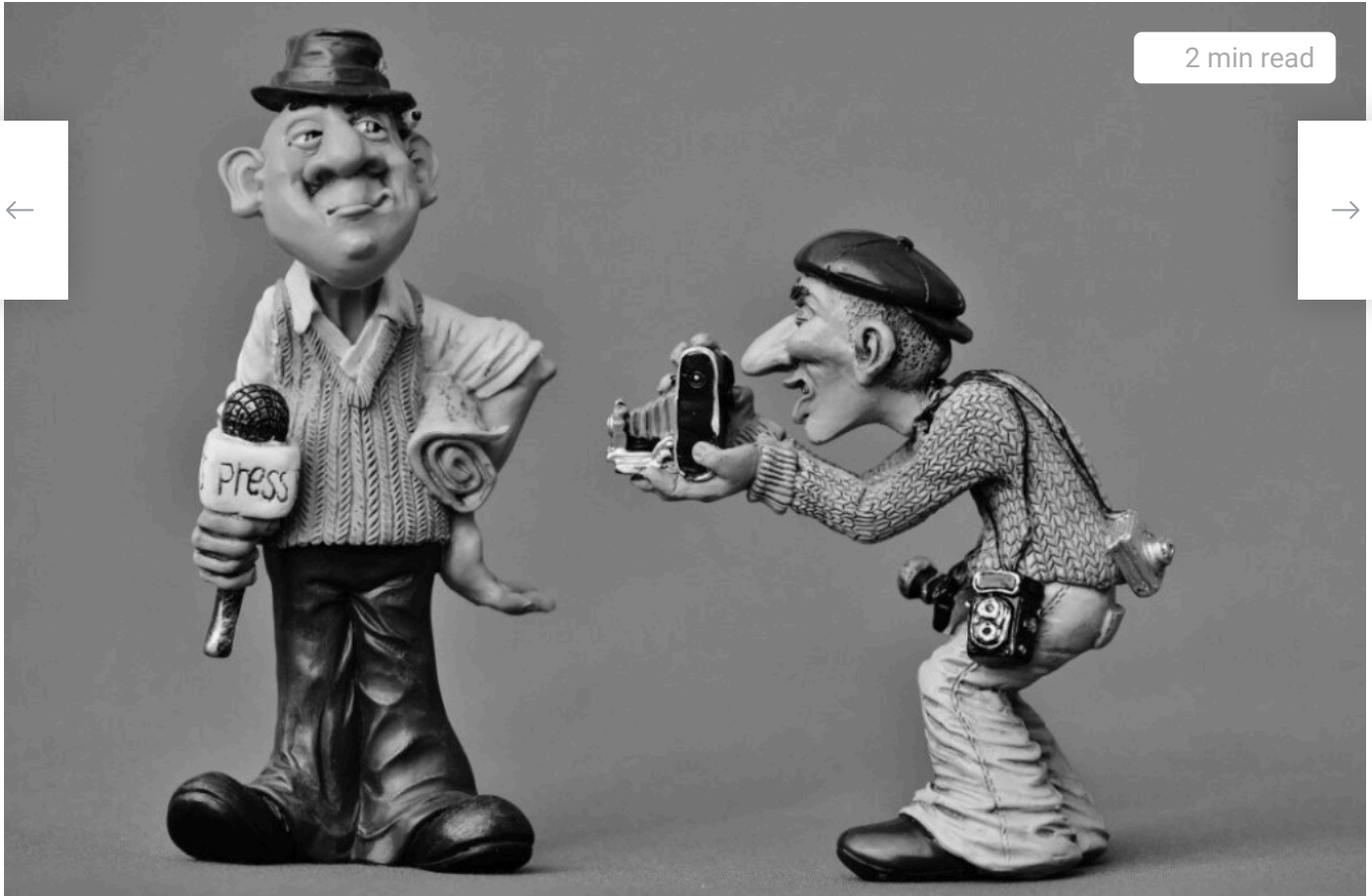
Share this...

स्वतंत्र भारत में यदि दिल्ली की उर्दू पत्रकारिता की बात होगी, तो महफ़ूज़ुर रहमान का नाम अवश्य लिया जाएगा।

आप न केवल उर्दू में, बल्कि हिंदी और अंग्रेज़ी में भी अपने विचार प्रकट करते थे। पत्रकारिता के अतिरिक्त, मरहूम महफ़ूज़ुर रहमान एक प्रखर अनुवादक और लेखक भी थे। हालांकि उन्होंने कई अखबारों के साथ काम किया, लेकिन उनकी पहचान मुख्यतः “क़ायद” (लखनऊ) और “दावत” (नई दिल्ली) से जुड़ी रही। “दावत” को एक बौद्धिक समाचार पत्र माना जाता था, जिसके वे मुख्य संपादक भी थे। कई लोगों का मानना है कि महफ़ूज़ुर रहमान ने अपने चार दशक के पत्रकारिता जीवन में कभी सिद्धांतों से समझौता नहीं किया।

आज यहाँ महफ़ूज़ुर रहमान जैसे महान पत्रकार की विरासत को याद करते हुए, मैं खुद को अत्यंत सौभाग्यशाली महसूस कर रहा हूँ। मैं आप सभी की ओर से उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। शायद उन्हें याद करने का सर्वोत्तम तरीका उनके लेखन को पढ़ना और उनके मिशन को आगे बढ़ाना होगा ताकि वह मूल्य-आधारित पत्रकारिता, जिसे आज काफी हद तक भुला दिया गया है, को गंभीरता और ईमानदारी के साथ फिर से अपनाया जा सके।

मैं 17वें महफ़ूज़ुर रहमान मेमोरियल व्याख्यान के लिए मुझे चुनने हेतु डॉ. सैयद अहमद ख़ान साहब और उनके अन्य साथियों का धन्यवाद करता हूँ। इस चयन में मेरी योग्यता से अधिक डॉक्टर साहब के प्रेम का योगदान है। सच कहूँ तो, मैं कुछ महीने पहले ही डॉक्टर साहब से मिला हूँ, लेकिन उनके व्यक्तित्व और उनकी सेवाओं से मैं अत्यधिक प्रभावित हूँ। उनके चेहरे पर सदैव मुस्कान और मीठी वाणी रहती है, और उनका मिशन उर्दू भाषा को फरोग देना है।

व्यक्तिगत अनुभव और उर्दू जगत के अन्य मित्रों की राय के आधार पर, मैं कह सकता हूँ कि उन्होंने उर्दू कास के लिए निरंतर प्रयास किया है। संसाधनों की कमी के बावजूद, वे वर्ष दर वर्ष उर्दू से जुड़े कार्यक्र आयोजित करते रहते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि डॉ. सैयद अहमद ख़ान साहब ने उर्दू जगत से जुड़े गुमनाम लेखकों, कवियों और पत्रकारों को मंच प्रदान किया और उनकी सेवाओं की कदर करते हुए में उन्हें पुरस्कारों से नवाज़ा है।

उर्दू प्रेमियों के इस समुदाय में मैं भी एक छोटा सदस्य हूँ। हालाँकि मेरा विषय राजनीति विज्ञान और इतिहास रहा है, लेकिन उर्दू भाषा और पत्रकारिता से मेरा नाता काफी पुराना है। कुछ लोगों को यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि मैंने अपनी पत्रकारिता यात्रा उर्दू प्रेस से शुरू की थी।

पटना से प्रकाशित एक मकबूल उर्दू अखबार ने मुझे पहली बार मंच प्रदान किया, जहाँ मैंने एक पत्रकार और लेखक के रूप में अपने विचार प्रकट किए। यक़ीन मानिए, समय के साथ उर्दू से मेरा संबंध और गहरा होता गया है। आज मैं पहले से कहीं अधिक उर्दू में लेख लिखता हूँ और उन्हें स्वयं कंप्यूटर पर टाइप करता हूँ। इन अनुभवों और अध्ययनों के आधार पर, आज मैं आपको समकालीन पत्रकारिता के बारे में कुछ विचार साझा करना चाहता हूँ।

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। लोकतंत्र की सफलता के लिए यह जरूरी है कि सत्ता का दुरुपयोग न हो। लेकिन अक्सर देखा जाता है कि जब कोई राजनीतिक नेता सारे फैसले खुद लेने लगता है, तो लोकतंत्र

अधिनायकवाद का खतरा मंडराने लगता है। लोकतंत्र में सत्ता का केंद्रीकरण अक्सर लोककल्याण के लिए हानिकारक सिद्ध होता है। इस समस्या का समाधान यह है कि संस्थाओं पर किसी एक व्यक्ति या दल का क़ब्ज़ा न हो और न ही असहमति और विरोध को दबाया जाए। यही कारण है कि लोकतंत्र के सिद्धांतकारों ने संवैधानिक रूप से सरकार के विभिन्न अंगों के बीच शक्तियों के विभाजन करने की वकालत की है।

उदाहरण के लिए, विधायिका का कार्य कानून बनाना है; कार्यपालिका का कार्य कानून को लागू करना है; जबकि न्यायपालिका की भूमिका यह सुनिश्चित करना है कि सभी कार्य संविधान के अनुरूप हों। इस प्रक्रिया में मीडिया की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

हालाँकि, भारत का संविधान पत्रकारों को कोई विशेष सुविधा प्रदान नहीं करता है, और संविधान में प्रेस के अधिकार के बारे में कोई विस्तृत चर्चा नहीं है। याद रखें कि एक पत्रकार के पास जो अधिकार हैं, वही अधिकार एक नागरिक के रूप में भी होते हैं।

एक पत्रकार को अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता संविधान के अनुच्छेद 19 से प्राप्त होती है, जो नागरिकों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है। हाल ही में, सुप्रीम कोर्ट ने फिर से यह दोहराया है कि अभिव्यक्ति की आजादी के बिना किसी भी लोकतंत्र की कल्पना नहीं की जा सकती। यही कारण है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार हमारे संविधान के मौलिक अधिकारों का हिस्सा है।

क अधिकार किसी भी लोकतांत्रिक संविधान की आत्मा होते हैं, क्योंकि वे नागरिकों को राज्य की तियों से बचाते हैं, और इसलिए इन्हें किसी भी परिस्थिति में रद्द नहीं किया जा सकता है। देश के संविध निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों के महत्व को पहचाना है और उन पर विशेष जोर दिया है। भारत के संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें मौलिक अधिकारों से संबंधित सभी शक्तियों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है ताकि भविष्य में उन पर कोई बड़ा विवाद न हो सके।

हालाँकि, त्रासदी यह है कि दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश में, जिसका संविधान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को मौलिक अधिकार के रूप में स्थापित करता है, मीडिया की विश्वसनीयता पर सवाल उठाए जा रहे हैं। आखिर, क्या गड़बड़ी है? ऐसा क्यों है कि दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, पिछड़े वर्ग और महिलाओं समेत बहुसंख्यक आबादी का मीडिया पर से भरोसा उठता जा रहा है? क्या ऐसा इसलिए नहीं है कि उत्पीड़ित वर्गों के मुद्दों को अक्सर मुख्यधारा की मीडिया में पर्याप्त स्थान नहीं मिल पाता?

आखिर, जो मीडिया दिन-रात लोकतंत्र की बात करता है, उसके न्यूज़रूम का माहौल अलोकतांत्रिक क्यों है? आज भी अखबारों और न्यूज़रूम में दबे-कुचले वर्गों और महिलाओं का प्रतिनिधित्व संतोषजनक क्यों नहीं है? आखिर, क्यों दुनिया की पाँचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था का मीडिया अपनी गुणवत्ता से समझौता कर रहा है, और अब उसकी स्थिति दुनिया के गरीब देशों के मीडिया से भी बदतर होती जा रही है? हमारे पास वैश्विक मीडिया हाउस क्यों नहीं हैं?

आप सभी जानते हैं कि कुछ दिन पहले एक प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक रिपोर्ट आई थी, जिसमें भारतीय मीडिया को 180 देशों में से 161वें स्थान पर रखा गया था, जो पिछले साल के 150वें स्थान से काफी नीचे है। यदि इस सूचकांक पर भरोसा किया जाए, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में प्रेस की स्थिति दक्षिण एशिया और अफ्रीका के कई गरीब देशों से भी बदतर है। क्या यह हमारे देश की मीडिया के लिए चिंतन का क्षण नहीं है? यही कारण है कि आज जिस विषय पर मुझे बोलने के लिए कहा गया है वह बिलकुल उपयुक्त है।

आज हम भारतीय मीडिया के सामने आने वाली चुनौतियों पर चर्चा करेंगे। यह चर्चा इसलिए भी बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि स्वतंत्र और निष्पक्ष मीडिया के बिना लोकतंत्र की कल्पना नहीं की जा सकती। स्वर्गीय महफ़ूज़ुर रहमान के पत्रकारिता मूल्य भी लोकतंत्र को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रेरित थे।

कई लोगों का मानना है कि भारत का मीडिया स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीके से काम नहीं कर रहा है। अक्सर, पत्रकार अपने मानकों को ताक पर रख देते हैं। सत्ता के करीब पहुंचने की होड़ में, वे सत्ताधारी दल के हितों को "राष्ट्रहित" के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। मीडिया से अपेक्षा की जाती है कि वह सच्चाई को उजागर करे और किसी भी मुद्दे के सभी पहलुओं पर चर्चा करे। किसी भी लोकतांत्रिक देश में, मीडिया से यह अपेक्षा की जाती है कि वह जनता के मुद्दों को उजागर करे और सरकार की कमियों पर सवाल उठाए। लेकिन दुख की बात यह है कि हमारे देश का मीडिया खबरों और लेखों को ऐसे पेश कर रहा है, जैसे वह सरकार का मुखपत्र हो।

←

ढ़ अभिजात वर्ग को खुश करने के लिए, भारतीय मीडिया अक्सर सनसनीखेज और नफरत भरे भाषणों ा लेता है और अपनी जिम्मेदारी भूल जाता है। जनता को धार्मिक और भावनात्मक मुद्दों में उलझाना मी या आदर्श बन गया है, जबकि वह पूरी कोशिश करता है कि जनता का ध्यान बुनियादी सवालों से भटक जाए। यही कारण है कि मुख्यधारा के मीडिया की गुणवत्ता दिन-ब-दिन गिरती जा रही है।

→

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि राष्ट्रीय मीडिया पिछली सरकारों का भी पैरोकार था। जनता ने आपातकाल का वह दौर भी देखा है जब मीडिया पर प्रतिबंध लगा दिए गए थे और कई मीडिया संस्थान अधिनायकवादी शासन के सामने झुक गए थे। लेकिन अब हालात पहले से भी बदतर नजर आ रहे हैं। आपातकाल लागू नहीं है, फिर भी मीडिया आपातकाल से भी ज्यादा डरा हुआ प्रतीत होता है और सरकार की गोद में बैठ गया है, साथ ही खुद को स्वतंत्र भी घोषित कर रहा है।

आपने भी देखा होगा कि पिछले कुछ सालों में मीडिया लगातार एकतरफा खबरें दिखा रहा है और एक विशेष संप्रदाय को निशाना बना रहा है। नफ़रत भरी ख़बरें बे-रोकटोक प्रकाशित हो रही हैं, और अदालतें और प्रेस काउंसिल इस बेलगाम मीडिया पर लगाम लगाने में विफल साबित हो रही हैं। इसका कारण यह है कि मीडिया को सरकार और पूंजीपतियों का समर्थन प्राप्त है।

हालात इतने ख़राब हो गए हैं कि मीडिया सरकार से सवाल पूछने की बजाय हमेशा विपक्ष का मज़ाक उड़ाता है। किसी भी दिन टीवी चैनलों पर समाचार देखें, और आप पाएंगे कि दस में से सात या आठ कहानियाँ सरकार की प्रशंसा करती हैं, जबकि बाकी दो विपक्ष की विफलताओं को उजागर करती हैं।

सोशल मीडिया से कुछ उम्मीद जगी थी, लेकिन इस पर भी सत्ताधारी दल का नियंत्रण है। सोशल मीडिया पर सरकार अपने अनुकूल 'कंटेंट' को बढ़ावा देने और अपनी नीतियों से असहमत आवाजों को दबाने में सफल हो रही है। सरकारी दबाव में कई एक्टिविस्ट पत्रकारों के सोशल मीडिया अकाउंट बंद कर दिए गए और बेबाकी से लिखने-बोलने वाले पत्रकारों को तरह-तरह से परेशान किया जा रहा है। देशभर में सरकारी नीतियों की आलोचना करने वाले पत्रकारों को बड़ी संख्या में जेल में डाल दिया गया है।

केरल के निडर पत्रकार कप्पन सिद्दीकी को तो आप जानते ही होंगे। उन्हें 28 महीने तक जेल में रखा गया। उन्हें 5 अक्टूबर 2020 को गिरफ्तार किया गया था, जब वह दिल्ली से हाथरस की यात्रा कर रहे थे। उनका हाथरस जाने का उद्देश्य एक दलित लड़की के अपमान और अत्याचार के मामले को कवर करना था, लेकिन उन्हें यूपी पुलिस ने रास्ते में ही रोक लिया और बिना किसी अपराध के उन पर आरोप लगा दिया। हिरासत के दौरान उन पर तरह-तरह के अत्याचार किए गए। सवाल यह है कि क्या किसी दलित लड़की को न्याय दिलाने की चाहत रखने वाले पत्रकार को "आतंकवादी" घोषित किया जा सकता है? क्या बलात्कार के खिलाफ़ आवाज उठाना या सरकार की विफलताओं का विरोध करना राष्ट्र-विरोधी है?

मीडिया अक्सर यह भूल जाता है कि सरकार से सवाल पूछने का मतलब देश को कमजोर करना नहीं है। यदि सरकार से सवाल नहीं किए जाते हैं, तो सरकारों के अधिनायकवादी बनने का खतरा बढ़ जाता है।

ीय मीडिया की गुणवत्ता में गिरावट का एक मुख्य कारण यह है कि कुछ बड़े पूंजीपति घराने प्रमुख मीडि
ानों को खरीद रहे हैं। पूंजीपति अपने मीडिया घरानों का उपयोग करके पर्दे के पीछे से सरकार को प्रभा
हैं। हुक्मरान भी यह समझते हैं कि यदि उन्हें अपनी विफलताओं पर पर्दा डालना है, तो उन्हें मीडिया के समर्थन की जरूरत पड़ेगी।

इस प्रकार, आप देख सकते हैं कि राजनीतिक नेताओं और पूंजीपतियों का गठजोड़ लोकतांत्रिक मूल्यों को कमजोर कर रहा है और मीडिया की स्वतंत्र आवाज़ों को दबा रहा है। तकनीक और अन्य लागतें इतनी बढ़ गई हैं कि मीडिया चलाना आम लोगों के बस की बात नहीं रह गई है।

दूसरी बड़ी समस्या यह है कि राष्ट्रीय मीडिया के भीतर 'सोशल डाइवर्सिटी' का अभाव है। एक विशेष जाति और समुदाय के लोग मीडिया पर हावी हैं और वे पूरे न्यूज़ रूम को नियंत्रित कर रहे हैं। न्यूज़रूम में वंचित वर्ग के लोगों को महत्वपूर्ण पदों से दूर रखा जा रहा है।

अखबारों के संपादकीय विभाग पर मार्केटिंग विभाग का दबाव लगातार बढ़ रहा है, और पत्रकारों तथा संपादकों की ताकत कम होती जा रही है। जहाँ अखबार मालिकों की आय बढ़ रही है, वहीं पत्रकारों का वेतन या तो नहीं बढ़ा है या काफी कम हो गया है। यूनियन बनाने का अधिकार संविधान के मौलिक अधिकारों का हिस्सा है, लेकिन अब पत्रकारों की यूनियनें कहीं नज़र नहीं आतीं और बोलने वालों को निशाना बनाया जा रहा है। कोरोना महामारी के दौरान भी कई पत्रकारों को नौकरी से निकाल दिया गया, और मीडिया में इसे लेकर कोई शोर नहीं हुआ।

दिन-ब-दिन मज़दूरों के बचे हुए अधिकार भी छीने जा रहे हैं, लेकिन इन्हें मीडिया में चर्चा का स्थान नहीं मिलता। महँगाई, बेरोज़गारी, शिक्षा का निजीकरण, और आरक्षण पर हमले को भी ख़बरों में ज्यादा जगह नहीं दी जाती।

फिर से कहना चाहूँगा कि समाज के विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग अक्सर अपने निजी लाभ के लिए उत्पीड़ित लोगों के अधिकारों को हड़प लेते हैं। मीडिया का काम समाज के हाशिये पर खड़े लोगों की आवाज़ बनना है, लेकिन इसके विपरीत, मीडिया शक्तिशाली लोगों के हितों को राष्ट्रीय हित के रूप में प्रस्तुत करता है और वंचितों के हितों को "स्वार्थ की राजनीति" कहकर खारिज कर देता है।

मिसाल के तौर पर, जब सरकार बड़े पूंजीपतियों का करोड़ों का कर्ज माफ़ करती है, तो मीडिया इसकी चर्चा नहीं करता। लेकिन जब गरीबों के हित में कोई छोटी सी नीति भी बनाई जाती है, तो उसे "मुफ़्त की रेवड़ी" कहकर हंगामा खड़ा किया जाता है और उसे देश के विकास के लिए हानिकारक बता दिया जाता है। संक्षेप में, मीडिया एक विशेष पार्टी और शक्तिशाली वर्गों का प्रतिनिधि बनता जा रहा है, और गरीबों तथा उत्पीड़ित वर्गों के हितों पर चर्चा के लिए उसके पास कोई जगह नहीं बची है।

एक और चिंताजनक बात यह है कि मीडिया एक खास व्यक्ति का महिमा मंडन कर रहा है। उसे ही महानायक बना कर पेश कर रहा है. एक विशेष नेता को पूरे देश की सभी समस्याओं के समाधान के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। भारत की अब तक की सारी प्रगति का श्रेय सिर्फ एक ही नेता को दिया जा रहा है। मगर ज़मीनी सचाई कि देश की बुनयादी समस्याएँ अब भी हल नहीं हुई हैं। यहाँ भी मीडिया सत्ता वर्ग की जगह विपक्षी दल ←नी सरकारों को दोषी ठहराता है। वर्षों पहले डॉ. अंबेडकर ने किसी के व्यक्ति की पूजा और उसे महाना→ की बीमारी के बारे में चेतावनी दी थी, और कहा था कि यह लोकतंत्र के लिए बेहद खतरनाक है। यह स देश के लोकतान्त्रिक मूल्यों के सरासर खिलाफ है।

हमारे देश में संसदीय लोकतंत्र को इसलिए अपनाया गया क्योंकि यह व्यवस्था एक व्यक्ति की जगह सामूहिक प्रयास को अधिक महत्व देती है। संसदीय लोकतंत्र सरकार का एक रूप है, जिसमें प्रधानमंत्री को संसद के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाता है और प्रधानमंत्री को कैबिनेट मंत्रियों की सलाह से सभी निर्णय लेने होते हैं। यह याद रखना चाहिए कि प्रधानमंत्री का पद कैबिनेट मंत्रियों के बराबर होता है। संसदीय लोकतंत्र सत्ता के केंद्रीकरण और 'हीरो-वर्शिप' को रोकने के लिए परामर्श और सामूहिक जिम्मेदारी पर जोर देता है।

हालाँकि, भारतीय लोकतंत्र के लिए यह चिंता का विषय है कि कैबिनेट मंत्रियों की राजनीतिक शक्ति लगातार कम हो रही है, और पूरी राजनीति एक ही नेता के इर्द-गिर्द केंद्रित हो गई है। मीडिया का कर्तव्य है कि वह शख्सियत परस्ती का विरोध करे और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए काम करे। लेकिन दुर्भाग्यवश मीडिया यह भूमिका निभाने में विफल हो रहा है।

एक और खतरनाक प्रवृत्ति यह है कि दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र का मीडिया अक्सर सभी मुद्दों को संवैधानिक दृष्टिकोण से देखने के बजाय सांप्रदायिक दृष्टिकोण से देखता है। अब कोरोना महामारी का ही उदाहरण लीजिए। 2020 में जब पूरी दुनिया आपदा की चपेट में थी और भारत भी इससे बुरी तरह प्रभावित हुआ, त

मुख्यधारा की मीडिया ने पूरे मामले को सांप्रदायिक रंग दे दिया। भारत का मीडिया शायद दुनिया का एकमात्र ऐसा मीडिया था जिसने महामारी के प्रसार के लिए एक विशेष धार्मिक समुदाय को दोषी ठहराया और अपना समय सरकार की विफलताओं को छिपाने में और एक खास नेता के "सफल नेतृत्व" की कहानियाँ सुनाने में बिताया।

देश में बिगड़ते जन स्वास्थ्य पर गंभीर चर्चा करने के बजाय, मीडिया ने अपनी सारी ऊर्जा जनता का ध्यान असली मुद्दों से भटकाने में लगा दी। इस उद्देश्य से, मीडिया ने लोगों को धार्मिक आधार पर बांटने की कोशिश की। एक मुस्लिम धार्मिक संगठन, तब्लीगी जमात, को इस महामारी के लिए दोषी ठहराया गया, और लाखों मुसलमानों को निशाना बनाया गया। हालात इतने ख़राब हो गए कि कई मुसलमानों को व्यापार बहिष्कार का सामना करना पड़ा, और "महामारी फैलाने" के आरोप में बड़ी संख्या में मुसलमानों को जेल में डाल दिया गया।

इस दौरान मीडिया की भूमिका बेहद खतरनाक रही। महामारी के दौरान टीवी डिबेट का विषय सार्वजनिक मुद्दों पर कम और तब्लीगी जमात पर अधिक केंद्रित था। मीडिया ने न तो चिकित्सा और जन-स्वास्थ्य पर गंभीरता से चर्चा की, न ही प्रवासी श्रमिकों की भुखमरी को मुद्दा बनाया। न्यूज़रूम में बातचीत मुसलमानों और इस्लाम के कथित "खतरों" पर केंद्रित थी। बिना किसी ठोस सबूत के, मीडिया ने यह प्रचार किया कि मुसलमान 'अज्ञानी', 'रूढ़िवादी', 'चरमपंथी', 'जिहादी', 'राष्ट्र-विरोधी' और 'आतंकवादी' हैं।

← समाचार चैनलों ने सारी सीमाएँ लांघ दी हैं। उदाहरण के लिए, एक समाचार चैनल ने "कोरोना युद्ध में ज
घात" विषय पर एक कार्यक्रम प्रसारित किया। अन्य समाचार चैनल भी पीछे नहीं रहे। उस समय टीवी →
याँ थीं: "धर्म के नाम पर जानलेवा अधर्म", "निजामुद्दीन का विलेन कौन है", "देश को कोरोना जिहाद से
बचाओ"। ऐसे टीवी कार्यक्रमों ने आम जनता के मन में मुसलमानों के प्रति नफरत पैदा करने का काम किया।

एक पत्रकार कितना असंवेदनशील हो सकता है, इसका अंदाज़ा तब हुआ जब एक न्यूज़ एंकर ने अपने शो में एक मुस्लिम मेहमान का अपमान किया। एक अन्य एंकर ने तब्लीगी जमात को "तालिबान जमात" तक कह डाला। इतना ही नहीं, मशहूर धार्मिक विद्वान मौलाना सज्जाद नौमानी की के खिलाफ नफरत पर आधारित प्रोपोगंडा किया गया।

संक्षेप में कहें, तो उस समय सांप्रदायिकता का वायरस कोरोना से भी अधिक तेजी से फैल रहा था। लेकिन अंततः सच सबके सामने आ ही गया। महीनों बाद बॉम्बे हाई कोर्ट ने माना कि पूरे मामले में तब्लीगी जमात को "बलि का बकरा" बनाया गया था।

इसके बाद विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की रिपोर्ट आई, जिसमें सरकार की विफलताओं को उजागर किया गया। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, भारत में कोरोना महामारी से 4.7 लाख लोगों की मौत हो चुकी है। आधिकारिक आंकड़ों और विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़ों के बीच स्पष्ट अंतर है। सरकार ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि 2021 के अंत तक कोरोना से 481,000 लोगों की मौत हो गई, जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन का कहना है कि मौतों की वास्तविक संख्या आधिकारिक आंकड़ों से दस गुना अधिक है। विश्व स्वास्थ्य संगठ

आंकड़े सच्चाई के करीब हैं क्योंकि महामारी के दौरान सरकार ने जनता को असहाय छोड़ दिया था और देशभर में लोग दवा, ऑक्सीजन, और इलाज के लिए संघर्ष कर रहे थे। लेकिन इस मुसीबत की घड़ी में देश के अधिकांश मीडिया हाउस ने जनता का साथ छोड़ दिया।

कोरोना के दौरान मीडिया की भूमिका से यह आशंका और प्रबल हो गई कि मीडिया अब एक व्यवसाय बन गया है, जहाँ सार्वजनिक मुद्दों का महत्व निजी हितों के सामने गौण हो गया है। कोरोना महामारी के दौरान सरकार लगातार जनविरोधी फैसले ले रही थी, जिनमें से एक था तीन कृषि कानूनों को लागू करना। किसानों ने इन कानूनों को अपने और देश के हित के खिलाफ माना और आश्वस्त हो गए कि सरकार अब उनसे अनाज नहीं खरीदेगी, और कृषि को पूरी तरह बाजार और बड़े पूंजीपतियों के हवाले कर दिया जाएगा।

इन खतरों को भांपते हुए किसानों ने बड़ा आंदोलन चलाया और दिल्ली समेत देश के विभिन्न हिस्सों में धरना दिया। इस आंदोलन के दौरान भी मीडिया की भूमिका बेहद नकारात्मक रही। मुख्यधारा के मीडिया ने न केवल किसानों को उचित स्थान नहीं दिया, बल्कि बड़े पूंजीपतियों के हितों को राष्ट्रीय हित के रूप में प्रस्तुत किया।

दूसरी ओर, मीडिया ने प्रदर्शनकारी किसानों को "खालिस्तानी" और आतंकवादियों के साथ जोड़कर उनकी छवि खराब करने की कोशिश की। ऐसे बेबुनियाद आरोप लगाते समय मीडिया ने यह नहीं सोचा कि किसानों की यह लड़ाई देश की गरीब जनता की लड़ाई है। अगर अनाज को पूरी तरह से बाजार के हवाले कर दिया गया, तो ...ों लोगों के रोजगार और पेट पर सीधा प्रहार होगा। इस बीच अखबार किसान-विरोधी खबरों और लेखो... ...है। एक अखबार ने कहा कि किसान कथित तौर पर विपक्षी दलों की "अवसरवादी राजनीति" का शिका... ..., जबकि अन्य ने कृषि कानूनों के फायदों के बारे में लिखा। यहाँ तक कहा गया कि "खालिस्तानी" तत्वो... किसानों के विरोध प्रदर्शन में घुसपैठ कर ली है।

एक हिंदी अखबार ने किसानों की समस्याओं पर चर्चा करने के बजाय यह खबर दी कि विरोध प्रदर्शन के कारण दिल्ली के लोगों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। एक अन्य अखबार ने बताया कि यूपी गेट पर धरने के कारण बड़ा ट्रैफिक जाम हो गया, जबकि कुछ अन्य अखबारों ने विपक्षी दलों पर सरकार को निशाना बनाने के लिए किसानों का उपयोग करने का आरोप लगाया।

किसान आंदोलन के दौरान मीडिया की नकारात्मक भूमिका ने इस आशंका को और मजबूत किया कि मीडिया की प्रमुख रुचि बड़े पूंजीपतियों के हितों की पूर्ति और सामाजिक असमानता को बनाए रखने में है। यह आंदोलन इस बात का प्रमाण है कि मीडिया ने खुद को जनता के मुद्दों से दूर कर लिया था और सरकार की गलत नीतियों को राष्ट्रहित के रूप में प्रस्तुत किया था। इस में कोई शक नहीं कि नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के मुद्दों पर भी मीडिया की नकारात्मक भूमिका स्पष्ट रूप से देखी गई।

हाल ही में उत्तर प्रदेश में मानवाधिकार पर हमले की कई घटनाएँ सामने आई हैं और राज्य की शासन व्यवस्था पर सवाल उठे हैं। अल्पसंख्यकों और अन्य वंचित वर्गों को निशाना बनाया जा रहा है। कई मौकों पर, पुलिस ने कानूनी प्रक्रियाओं की अनदेखी की, दुर्व्यवहार किया और कई मुठभेड़ें कीं। अल्पसंख्यकों के घरों को बुलड़... ...े

तोड़े जाने पर मानवाधिकार कार्यकर्ताओं ने आक्रोश जताया है। इन सभी गंभीर मुद्दों पर भी मीडिया की भूमिका बेहद नकारात्मक रही, और मीडिया ने संविधान और कानून की रक्षा करने के बजाय बुलडोजर शासन का मुखर समर्थन किया।

पिछले साल, जेएनयू छात्रा और एक्टिविस्ट आफरीन फातिमा का घर उत्तर प्रदेश पुलिस ने अचानक तोड़ दिया था। कानूनी विशेषज्ञों ने कहा कि राज्य सरकार ने अपनी शक्तियों का घोर दुरुपयोग किया है और कानून तथा संविधान का मज़ाक उड़ाया है। यह भी आरोप लगाया गया कि उत्तर प्रदेश सरकार कुछ धर्मों और जातियों के लोगों को निशाना बना रही है और धर्मनिरपेक्षता के संवैधानिक मूल्यों का पालन नहीं कर रही है।

लेकिन मीडिया इन मुद्दों को नजरअंदाज कर रहा है। यह बहुत दुखद है कि लोकतंत्र के स्तंभ, मीडिया ने भी दबी जुबान में 'एनकाउंटर कल्चर' को वैध ठहराया और इसे सांप्रदायिक रंग दे दिया। ऐसा प्रतीत होता है जैसे "गोदी" मीडिया अब "गोली" मीडिया बनता जा रहा है।

वैसे तो स्थिति काफी अंधकारमय दिख रही है, लेकिन सवाल यह है कि हमें बिगड़ी हुई स्थिति को सुधारने के लिए खुद आगे आना होगा। इस देश के लोकतंत्र को बचाने के लिए दबे-कुचले वर्गों को सक्रिय होना पड़ेगा, क्योंकि यदि लोकतंत्र पर खतरे के बादल मंडराने लगे तो सबसे अधिक नुकसान कमजोर और दलित वर्गों को होगा। समाधान खोजने के लिए, मैं आपको भाषाविद् और बुद्धिजीवी नोम चॉम्स्की के लेखन की ओर निर्देशित
चाहूंगा। याद रखें कि चॉम्स्की की पुस्तक मैन्युफैक्चरिंगकंसेंट वैकल्पिक मीडिया को सामने लाने की
अत्यंत महत्वपूर्ण किताब है। प्रोफेसर चॉम्स्की ने मीडिया को लोकतांत्रिक मूल्यों पर बनाए रखने के
महत्वपूर्ण बातें कही हैं। उन्होंने जमीनी स्तर पर वैकल्पिक मीडिया के महत्व पर जोर देते हुए कहा कि इ
सफलतापूर्वक चलाने के लिए लोगों को आगे आना होगा।

प्रोफेसर चॉम्स्की ने जो मार्गदर्शन दिया है, उसे ज़मीन पर उतरने का प्रयास कई जगहों पर हो रहा है। आप काउंटरकरंट्स से परिचित होंगे, जो एक वैकल्पिक अंग्रेजी समाचार पोर्टल है। इसे 2002 के गुजरात दंगों के बाद लॉन्च किया गया था, और आज इसे दुनिया भर के हजारों लोग पढ़ते हैं। भारत के अलावा, इसके पाठक यूरोप, अमेरिका, पश्चिम एशिया, दक्षिण एशिया, ऑस्ट्रेलिया और अन्य देशों में भी हैं। इस वेबसाइट पर हजारों समाचार और लेख प्रकाशित हो चुके हैं। काउंटरकरंट्स पर प्रकाशित समाचार और लेख न केवल लोगों को सूचित कर रहे हैं, बल्कि भविष्य के इतिहासकारों के लिए महत्वपूर्ण स्त्रोतों को भी संरक्षित कर रहे हैं। इस न्यूज़ पोर्टल से सामाजिक कार्यकर्ताओं, लेखकों और पत्रकारों का एक समूह जुड़ा हुआ है।

इस यात्रा के मार्गदर्शक बीनू मैथ्यू हैं, जो इस न्यूज़ पोर्टल के प्रधान संपादक हैं। बीनू का जीवन वैकल्पिक मीडिया का प्रतीक बन चुका है। उनका जीवन पत्रकारिता समुदाय के लिए यह सीख देता है कि पैसा, पदोन्नति या प्रसिद्धि कभी सिद्धांतों का विकल्प नहीं हो सकते। उन्होंने अपने कार्यों से यह साबित किया है कि एक पत्रकार को सत्ता की गलियों में जगह तलाशने की ज़रूरत नहीं है, बल्कि उसे जनता के साथ खड़ा रहना चाहिए। संपादकीय स्वतंत्रता को सुरक्षित रखना बीनू मैथ्यू की सर्वोच्च प्राथमिकता रही है। काउंटरकरंट्स किसी भी प्रकार के विज्ञापन स्वीकार नहीं करता है और न ही किसी संस्थागत फंडिंग की मांग करता है। बीनू मैथ्यू व

मानना है कि जैसे ही कोई संस्था या संगठन मीडिया की जेब में पैसा डालता है, मीडिया की आवाज दबने लगती है।

जहां तक मीडिया खर्चों का सवाल है, बीनू मैथ्यू जनता के समर्थन पर निर्भर हैं। वह देश में मुख्यधारा मीडिया की मौजूदा स्थिति को लेकर काफी चिंतित हैं। उनका कहना है कि कई पत्रकार अब खुलेआम नफरत फैला रहे हैं, और उदारवादी वर्ग उनका मुकाबला करने में असमर्थ है क्योंकि वे वाम से दक्षिण तक सभी को खुश करने में लगे हुए हैं। इस पृष्ठभूमि में स्वतंत्र और निष्पक्ष मीडिया की सख्त आवश्यकता है। बीनू का मानना है कि देश के हालात तभी सुधरेंगे जब काउंटरकरंट्स जैसे हजारों प्लेटफॉर्म सक्रिय रूप से काम करेंगे। उनका आग्रह है कि सार्वजनिक पत्रकारिता को विभिन्न भाषाओं और क्षेत्रों में बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म और वैकल्पिक मीडिया के क्षेत्र में सक्रिय पत्रकारों के लिए बीनू मैथ्यू का संदेश है कि उन्हें सस्ती प्रसिद्धि के लालच में अपने मिशन से नहीं भटकना चाहिए। उनका मानना है कि किसी भी पत्रकारिता संगठन को अपने पत्रकारों और लेखकों पर किसी विशेष विचारधारा को थोपना नहीं चाहिए, बल्कि विभिन्न विचारों और आवाज़ों को स्थान देना चाहिए। एक पत्रकार के रूप में बीनू का विश्वास है कि दुनिया की समस्याएं आपस में जुड़ी हुई हैं, इसलिए हर मोर्चे पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है।

चाहे वह साम्राज्यवाद और वैश्वीकरण का विरोध हो, जलवायु परिवर्तन के खतरों का सामना हो, सांप्रदायिकता [...]रोध हो, या दलितों और हाशिए पर मौजूद समूहों के अधिकारों की रक्षा हो—हर मुद्दे पर आवाज उठाना [...]श्यक है। महिलाओं के खिलाफ हिंसा और नागरिक एवं मानवाधिकारों के उल्लंघन के खिलाफ खड़े हो[...] [...]ारों की बड़ी जिम्मेदारी है। सच कहूं तो काउंटरकरंट्स का अनुभव एक पहाड़ पर रखे दीपक की तरह है, भले ही अकेले पूरे अंधेरे को मिटा नहीं सकता, लेकिन अंधकार से लड़ने का साहस अवश्य पैदा करता है।

अपने निष्कर्ष में यही कहना चाहूँगा कि यदि हमें इस निराशा के अंधकार को दूर कर प्रकाश फैलाना है, तो किसी फ़रिश्ता की प्रतीक्षा किए बिना हमें स्वयं आगे आना होगा। लोकतंत्र को बचाने और मीडिया की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए हमें एक-एक दीपक जलाना होगा। सार्वजनिक मुद्दों से जुड़ी पत्रकारिता के चिराग को जलना होगा. वंचितों की आवाज़ शोषक वर्ग नहीं उठा पाएंगे. उन्हें खुद अपना मीडिया खड़ा करना होगा. यह सब किसी करिश्मा से नहीं होगा, बल्कि यह सामूहिक प्रयास से होगा। आप का बहुत बहुत शुक्रिया

(14 मई 2023 को, दिल्ली के निज़ामुद्दीन स्थित ग़ालिब अकादमी के सभागार में डॉ. अभय कुमार ने सत्रहवां महफूज़ुर रहमान मेमोरियल व्याख्यान दिया। उर्दू में दिए गए इस व्याख्यान का शीर्षक था “सहाफत का मुहासिबा,” जिसका हिंदी अनुवाद मामूली संपादन के साथ यहाँ प्रस्तुत किया गया है।
ईमेल:debatingissues@gmail.com)

Share this...